International Journal of Multidisciplinary Education and Research
ISSN: 2455-4588; Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.in
Volume 2; Issue 2; March 2017; Page No. 67-70

बुद्ध बचनानुसार काठ से आग पैदा

डॉ0 कामेश्वर प्रसाद

एम0ए0, पी0एच0डी0, पोस्ट डाक्टोरल रिसर्च फैलो प्राप्त नव नालन्दा महाविहार, (मानित विश्वविद्यालय), नालन्दा बिहार, भारत।

सारांश

महामानव बुद्ध ने जाति के मामले में सबके साथ उसी तरह का व्यवहार किया जिस तरह का सूर्य और चाँद करते है। मनुष्य–मनुष्य का शोषण या एक के आनन्द के लिए दुसरो को दुःख देना ऐसी बातों के सख्त विरोधी बुद्ध थे। मानवीय सामाजिक व्यवस्था का अर्थ ही है एक ऐसी व्यवस्था जो मनुष्य के अर्थात् चेतन के विकास के लिए वातावरण की भूमिका निभा सके। बुद्ध के बचनानुसार जाति मत पूछ। आचरण पूछ। काठ से आग पैदा होती है। नीच कुल का पुरूष भी धृतिमान, ज्ञानी एवं पाप–रहित मुनि हो सकता है। अग्रासन प्राप्त करने के लिए किसी कुल से प्रव्रजित होना प्रमाण न हो, वरन् उसकी ज्येष्ठता सौम्यता और सद्गुण प्रमाण हो।

प्रख्यात चिंतक एस0 राधा कृष्णन ने कहा है कि जब हम किसी अछूत से प्रेम करते है तब हमें घृणा एवं शत्रुता का ख्याल नहीं रहता है, भले ही वह प्रेम पात्र कितना ही पतित क्यों न हो। डॉ0 अम्बेडकर का कथन विशेष उल्लेखनीय है जाति की समस्या सैद्धान्तिक और व्यवहारिक रूप में विकराल समस्या है। रजनीकान्त शास्त्री का कथन यह व्यवस्था कर्म तथा जन्म दोनों ही दृष्टि से अव्यवहारिक तथा हानिकारक है। वर्ण व्यवस्था और जाति भेद की समस्या का समाधान करने के लिए कबीर, रैदास, दादू एवं अन्य संतों ने प्रयास किया था, हिन्दु धर्म अंधविश्वास, पाखण्डवाद तथा कर्मकाण्ड पर निर्भर करता है, जबकि बौद्ध धर्म प्रज्ञा, शील, मैत्री और करूणा सर्वोच्य साध्य है। जिनका अनुशीलन करके व्यक्ति ''बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय, लोकानुकम्पाय की ओर उन्मुख हो सकता है।''

मूल शब्दः बुद्ध, काठ, आग पैदा

प्रस्तावना

महामानव बुद्ध ने जाति के मामले में सबके साथ उसी तरह का व्यवहार किया जिस तरह का सूर्य व चाँद करते है। जैसे वे ब्राह्मण और चाण्डाल दोनों को समान रूप में प्रकाशित करते है वैसे ही बुद्ध ने सबको ज्ञान के आलोक से एक समान लाभान्वित किया। भगवान बुद्ध अपने युग की सामाजिक स्थितियों से संतुष्ट नहीं थे। इसलिए उन्होंने कुछ ऐसे विचार रखे, जिनसे नवीन समाज की स्थापना की जा सके। नकारात्मक दृष्टि से उन्होंनें ऐसे समाज का दृष्टिकोण रखा, जिसमें कोई अन्याय एवं दुःख न हो। सकारात्मक दृष्टि से बुद्ध ने ऐसे समाज का भाव प्रकट किया, जिसमें सब लोग स्वतंत्रता और समता के साथ रहे, सबके लिए भौतिक सुविधाएं हो, सब सदस्यों में करूणा और मैत्री की भावनाएं हों, समाज में सहयोग एवं सद्भावना हो। क्या हो और क्या न हो – दोनो ही पक्ष उनके सामाजिक दृष्टिकोण में मिलते है।

बौद्ध–दर्शन के सामाजिक पुननिर्माण का दृष्टिकोण आसानी से समझा जा सकता है। उसे व्यावहारिक रूप भी दिया जा सकता है। बुद्ध वर्ण व्यवस्था के कट्टर विरोधी थे, मुख्यतः उस सामाजिक व्यवस्था के, जिस पर ब्राह्मणों का आधिपत्य तथा उनके द्वारा निर्धन लोगों पर दबाव एवं करस किया जा रहा था। एक बार भगवान बुद्ध ने कहा – ''हे भिक्षुओं, जिस प्रकार महानदियां सागर में मिलकर एकाकार हो जाती है, उसी प्रकार चारों वर्णों के सदस्य तथागत द्वारा प्रतिपादित धर्म के नियमानुसार प्रव्रजित होकर यह भूल जाते है कि हमारा अमुक वर्ण था, अमुक वंश था उनकी एक मात्र संज्ञा रह जाती है – श्रमण।'' तथाकथित ऊंची कही जाने वाले जातियों द्वारा निम्न वर्ग के लोगों का जो शोषण होता था, उसका बुद्ध ने खुलकर विरोध किया। पण्डा–पुजारियों के आडम्बर तथा व्यवहारों का भी विरोध किया। इन सब बातों–ब्राह्मणवाद, पूजा–पाठ, कर्म काण्ड, यज्ञ–हवन से ऐसे सम्बन्ध उभरते रहते थे, जो असमता तथा अन्याय पर आधारित थे। उनसे समाज में अनेक प्रकार के दुःख उत्पन्न होते थे। यही कारण है कि बुद्ध ने नवीन समाज की स्थापना के लिए उन्हें अनावश्यक तथा व्यर्थ बताया।

''बुद्धिस्ट समाज का दृष्टिकोण ब्राह्मणवाद की दैविक समाज–व्यवस्था के एक–दम विरूद्ध है, वह व्यवस्था, जिसे सदैव के लिए ठीक समझा गया और जिसमें व्यक्ति को एक अपरिर्तनशील स्थिति में सीमित रखा गया। व्यावहारिक रूप से ब्राह्मणवादी व्यवस्था ने हिन्दु सामन्तशाही के राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक विशेषाधिकारों को बढ़ावा दिया। बुद्ध ने इस व्यवस्था को पूर्ण रूप से हिला दिया और कहा कि वर्ण–भेद ऐच्छिक एवं साम्प्रदायिक है, न कि दैविक (या ईश्वर प्रदत्त) ब्राह्मण लोगों के अधिकारों की कड़ी आलोचना करते हुए बुद्ध ने संसार और समाज के विकासवादी विचार का प्रतिपादन किया।''

प्रत्येक मनुष्य दुःख की समस्या से घिरा हुआ है। बुद्ध ने दुःख के कारणों पर प्रकाश डाला और उसका अन्त करने के लिए एक मार्ग बताया। दुःख दूर करने का मार्ग अष्टांग–मार्ग है–सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाक् सम्यक् व्यवहार, सम्यक् आजीविका, सम्यक् प्रयत्न,सम्यक् चित्त और सम्यक् समाधि। बुद्ध ने आशा का भाव प्रस्तुत किया कि दुःख का अन्त हो सकता है। तृष्णा पर नियन्त्रण करके अपने को मनुष्य सुखी बना सकता है। अज्ञान, लोभ–लालच, भोग–विलास, राग–द्वेष, जो दुःख के कारण है, उनको नियन्त्रित करके स्वतन्त्रता को प्राप्त कर सकते है।

यदि सभी लोग इन सिद्धान्तों का पालन करें, तो निश्चित ही एक ऐसे समाज का उदय होगा, जिसमें जाति पांति, असमता, अन्याय, दबाव, शोषण, करस, उत्पीड़न, पण्डा–पुजारीवाद, पशु–बलि आदि कुछ भी नहीं होंगे। बुद्ध का सोचा हुआ समाज उस समय आ सकता है, जब किसी भी मनुष्य का राग–द्वेष, भोग–विलास, ईर्ष्या आदि की भावना नहीं होगी। ऐसे ही सामाजिक अस्तित्व में सब लोग सहयोग एवं सद्भावना, समता और दायित्व के विचारों को लेकर काम करेंगे। तत्पश्चात् ही स्वतन्त्रता, समता एवं भ्रातृत्व पर आधारित समाज का उदय हो सकेगा।

मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण या एक के आनन्द के लिए दूसरे को दुःख देना, ऐसी बातों के सख्त विरोधी बुद्ध थें। बुद्धवादी समाज यह चाहता है कि लोग उदार बनें, अपने आचरण में नैतिक बनें तथा

आर्थिक व्यवहार में ईमानदारी से काम लें। इन्हीं सब बातों से समाज का कल्याण हो सकता है।

बुद्ध का नैतिक आदर्षवाद

बुद्ध को ''तत्वज्ञान सम्बन्धी मामलों में बहुत कम रूचि थी। उन्होंने अपने समय के उन दार्शनिकों को लताड़ा, जो ब्रह्म, निरपेक्ष–शक्ति और मनुष्य के सम्बन्ध को दैविक सत्ता से जोड़ने की कल्पनाओं में व्यस्त थे। बुद्ध ने सामान्यतः स्वीकृत संसार के दृष्टिकोण को ही मान लिया, जिसमें अनेक व्यक्तिगत रूप में मिलने वाले प्राणी है। ये सब प्राणी कार्य–कारण के नियम के अन्तर्गत आते है, अर्थात कर्म का सिद्धान्त सब पर लागू होता है, जिसकी व्याख्या बुद्ध ने शारीरिक दृष्टि की तुलना में नैतिक भाव को लेकर अधिक की।''

बुद्ध का दर्शन न तो सर्वविनाशवादी है और न नैराश्यवाद पर ही आधारित है। यह तो ''जीवन के कठोर तथ्यों का सामना करता है, जैसे बुराई, दुःख, दरिद्रता। तत्पश्यात् वह एक ऐसे मार्ग को प्रस्तुत करता है, जिस पर चल कर मनुष्य इन दुःखो से ऊपर उठकर ज्ञान और शान्ति की अवस्था में पहुॅच सकता है।

समता–मूलक समाज की जरूरत पर बल

मानवीय सामाजिक व्यवस्था का अर्थ ही है – एक ऐसी व्यवस्था जो मनुष्य के अर्थात् चेतन के, विकास के लिए वातावरण की भूमिका निभा सके। मनुष्य, जो कि एक सामाजिक प्राणी है, इस प्रकार की सामाजिक–व्यवस्था में रह कर ही लोक–कल्याण के आदर्श का अनुशीलन कर अपनी अनुद्घाटित सम्भावनाओं और शक्तियों का चरम विकास कर सकता है। ऐसी सामाजिक–व्यवस्था की मांग की पूर्ति एक समतामूलक सामाजिक व्यवस्था में ही संभव है, ऐसी व्यवस्था जिसका सर्वोच्च लक्ष्य तो यह है कि मनुष्यों की आध्यात्मिक पूर्णता एवं पवित्रता की स्थिति तक पहुँचने के लिए प्रशिक्षण दिया जाए, लेकिन साथ ही इसकी एक आवश्यकता लक्ष्य, इसके सांसारिक लक्ष्यों के कारण, इस प्रकार की सामाजिक दिशाओं का विकास करना भी है जिसमें जन समुदाय नैतिक, बौद्धिक एवं भौतिक–जीवन के ऐसे स्तर पर पहुँच सके जो सबकी भलाई और शान्ति के अनुकूल हो, क्योंकि ये दशाएँ प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन और अपनी स्वतंत्रता देती है। जातक की सामाजिक चेतना में इसी समतामूलक समाज प्रभावी है। इस मार्ग की पृष्ट भूमि पर एक तरफ जहॉ तत्तकालीन विश्रृंखलता के शिकजें से छुटकारा पाने की छटपटाहट प्रभावी है। वहीं दुसरी तरफ जो महत्वपूर्ण है वह बौद्ध धर्म चेतना में अन्तः प्रभावी मानवतावादी बल यह सर्वथा द्रष्टव्य है कि जातक–कथाओं पर बौद्ध–धर्म की पूरी छाप है तथा उनका सम्पूर्ण ढांचा बौद्ध–धर्म के नैतिक आदर्श के अनुकूल है। वह नैतिक आदर्श जो मूलतः मानवतावादी चेतना से अनुप्राणित है। जातक – रचनाकारों के सामने था तत्कालीन विश्रृंखलित समाज लेकिन उनकी अन्तः चेतना में था – वह आदर्श समाज जो समतामूलक व्यवस्था को दर्शाता हो, वह व्यवस्था जिसमें जाति, नस्ल और वर्ण की कोई ऐसी चहारदीवारी न हो जो मानव को मानव से विमुख किए हो। वह अवस्था जो स्वयं बुद्ध के इस वचन को सार्थक करती हो कि 'जाति मत पूछ। आचरण पूछ। काठ से आग पैदा होती है। नीच–कुल का पुरूष भी धृतिमान्, ज्ञानी एवं पाप–रहित मुनि हो सकता है। वह व्यवस्था जहाँ जन्म के आधार पर मानव के बीच ऊँच–नीच का श्रेणीगत विभेद न हो, जहां अग्रासन इत्यादि प्राप्त करने के लिए क्षत्रिय कुल, ब्राह्मण कुल या वैश्य कुल से प्रव्रजित होना प्रमाण न हो, वरन् जहॉ मानव के बीच उसकी ज्येष्ठता सौम्यता एवं अन्य सदगुण प्रमाण हो।

लेकिन क्या यह समाज–व्यवस्था यथार्थ के धरातल पर संभव है क्या यह केवल आदर्श की उड़ान मात्र नहीं है? निश्चयतः नहीं! व्यवहार के धरातल पर यह व्यवस्था संभव है बशर्ते कि मानव ने जिस आत्मवंचना से अपने को आच्छन्न कर रखा है, उससे छुटकारा पा लिया जाए। जातक–कथाओं में व्यक्त बुद्ध के उपदेशों के आधार पर यह सत्य सर्वथा सुव्यक्त होता है कि यदि मानवता के इस लक्ष्य को प्राप्त करना है तो मनुष्यों को अपनी बीच विद्यमान शत्रुता, घृणा एवं द्वेष की खाइयों को भरना ही होगा और इसके लिए जो सबसे महत्वपूर्ण मार्ग है वह है– मित्रता एवं प्रेम का मार्ग। प्रख्यात चिन्तक एस0 राधाकृष्णन् ने भी कहा है : जब हम प्रेम करते है तब हमें घृणा एवं शत्रुता का अधिकार नहीं रहता भले ही वह प्रेमपात्र कितना ही पतित क्यों न हो गया हो। यही कारण है कि राजोवाद–जातक में काशी–नरेश को प्रतीक के रूप में रख कर जनसमुदाय को यह संदेश प्रदान किया गया है कि क्रोध का क्षमा से, शत्रुता का मित्रता से तथा लोभ का उदारता से, उपचार किया जाना चाहिए। वस्तुतः जातक–चेतना में यह भाव अन्तः प्रभावी है कि मानव मानव के साथ एकाकार हो तभी उदात्त सामाजिक व्यवस्था कायम हो सकती है और इसके लिए यह अपरिहार्य है न केवल मानव–मात्र के लिए वरन् समस्त जीवों के लिए प्रेम, सेवा एवं त्याग की भावना विकसित हो। राधाकृष्णन ने कहा है : सच्चा जीवन अपने को प्रेम में ही अभिव्यक्त करता है तथा इसका लक्ष्य होता है– मानव में एकत्व स्थापित करना। यही कारण है कि ऋग्वेद ने समस्त मानवमात्र को यह अमर संदेश प्रदान किया है :–

> संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
> समानो व आकृतिः, समाना हृदयानि वः समानमस्तु व मना यथा व सुराहासति।

अर्थात् मिलकर चलों, मिलजुल कर बात करो, तुम्हारे मन एक समान जानें, तुम्हारे यत्न साथ–साथ हों, तुम्हारे हृदय एकमत हों, तुम्हारे मन संयुक्त हों, जिससे हम सब सुखी हो सकें।

जातक–सामाजिक–चेतना तत्कालीन मानव की स्थिति एवं समाज के विश्रृंखलित रूप के प्रति एक सकारात्मक दृष्टिमूलक प्रतिक्रिया है। इस चेतना में प्रभावी है एक ऐसी समाज–व्यवस्था का निर्माण जिसमें मानवता सुरक्षित होगी, जो मानव की सामाजिक–आर्थिक एवं धार्मिक चेतना के विकास के लिए उपयुक्त वातावरण की भूमिका निभाएगी। अहिंसा, मानव–स्वतंत्रता, समानता, सह अस्तित्व एवं बन्धुत्व के महत् आदर्शों पर आधारित इस समाज–व्यवस्था की जातक की परिकल्पना वास्तव में उसकी मानवतावादी आकांक्षाओं की प्रतीक है।

वर्ण–व्यवस्था और जातिवाद भारत में ऐसा लाइलाज भंयकर कैंसर रोग की तरह है जिसके विषाणुओं को समाप्त करके ही इसका इलाज किया जा सकता है। डॉ. वी. आर. आंबेडकर का कथन इस संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय है, ''जाति की समस्या सैद्धान्तिक और व्यावहारिक रूप में एक विकराल समस्या है। यह समस्या जितनी व्यावहारिक रूप से उलझी है, उतना ही इसका सैद्धांतिक पक्ष इन्द्रजाल है। यह ऐसी व्यवस्था है, जिसके फलितार्थ गहन हैं। होने को तो यह एक स्थानीय समस्या है, लेकिन इसके परिणाम बड़े विकराल है। इस संबंध में रजनीकान्त शास्त्री का कथन हैं – ''यह व्यवस्था, कर्म तथा जन्म, दोनो ही दृष्टि से असिद्ध, अव्यावहारिक तथा हानिकारक है। कर्म–मूलक वर्ण व्यवस्था, जन्म–मूलक वर्ण–व्यवस्था से कुछ अच्छी होती हुई भी सदा चल नहीं सकती। वह अवश्य ही चलते–चलते कुछ काल के बाद स्वार्थवश जाति–प्रथा में बदलकर उन्हीं बुराईयों को उत्पन्न कर देगी, जिनके शिकार हम आए दिन हो रहे है। इसके अतिरिक्त कर्म–मूलक वर्ण–व्यवस्था के विरूद्ध एक भारी आपत्ति तो यह है कि उसको व्यवहारिक रूप देना नितांत मुश्किल है, कारण हैं। कि जन्म मूलक वर्ण–व्यवस्था के बल पर जो जातियाँ नाना प्रकार की सामाजिक सुविधाओं का उपभोग कर रहीं हैं। वे स्वार्थवश कर्मानुसार चलने नहीं देगी। राहुल सांस्कृत्यायन ने अपने हृदय की पीड़ा को इस प्रकार व्यक्त किया है,

''हर पीढ़ी के करोड़ों व्यक्तियों के जीवन को इस प्रकार कलुषित, पीड़ित कंटकाकीर्ण बनाकर क्या वह अपनी नर–पिशाचिका का परिचय नहीं देता। ऐसे समाज के लिए हमारे दिल में क्या इज्जत हो सकती है, क्या सहानुभूति हो सकती है ? बाहर से धर्म का ढोंग, सदाचार का अभिनय, ज्ञान–विज्ञान का तमाशा किया जाता है और भीतर से यह जघन्य, कुत्सित कर्म! धिक्कार है ऐसे समाज को!! सर्वनाश हो ऐसे समाज का !प्राचीन काल में वर्ण–व्यवस्था और जाति–भेद तीव्रगति से विकसित और पल्लवित हुए थे। आज भी वह स्थिति कुछ नए आयामों में वृद्धि के कारण ज्यों की त्यों दृष्टिगोचर हो रही है। आज इस व्यवस्था की मानसिकता रखने और विश्वास करने वाले व्यक्तियों ने दलित और शोषित समाज के अच्छे–भले इंसानो को पशु बनाकर नरक में ढ़केल दिया है। आज भारत की जो दुर्दशा, दुर्गति और पराभाव दिखाई देता है, उसका सबसे बड़ा कारण वर्ण–व्यवस्था और जाति–भेद है। इस समस्या के समाधान के लिए प्राचीन काल से लेकर अब तक अनेक प्रयास हुए, लेकिन आज भी यह अमरबेल की भांति बनी हुई है। उनकी परम्परा में आने वाले कुछ अन्य चिन्तकों, समाज–सुधारकों और दार्षनिकों ने प्रभावकारी ढंग से इस पर भयंकर आक्रमण किया और उन्हे श्रेष्ठ उपलब्धियाँ भी प्राप्त हुई थी। वर्ण–व्यवस्था और जाति–भेद की समस्या का कबीर, रैदास, दादु, संत रज्जब, और भक्त सेन नाई आदि ने भी समाधान करने का प्रयास किया था, लेकिन उन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हो सकी।

महर्षि दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द और गांधी जी ने इसके समाधान के लिए अपने–अपने सिद्धांत प्रस्तुत किए, लेकिन उनके सिद्धांत विरोधों और विरोधाभासों से भरे होने के कारण केवल अव्यावहारिक और पाखण्ड बनकर रह गए, जिसके परिणामस्वरूप भारत की स्वतंत्रता के पैसठ–छीयासठ वर्ष पूरे होने के बाद भी जातिवाद का विष–वृक्ष तीव्रगत से पल्लवित एवं विकसित हो रहा है। महाविद्वान राहुल सांस्कृत्यायन गांधी जी के प्रयास के बारे में कहते है, ''हिन्दुओं की धर्म–पुस्तकें इस अन्याय के आध्यात्मिक और दार्शनिक कारण पेश करती है। गांधीजी अछूतपन को हटाना चाहते थे।, लेकिन शास्त्र और वेद की दुहाई भी साथ लेकर चलना चाहते थे जो ह्रदयघातक था। यह तो कीचड़ से कीचड़ धोना है। [18] रजनीकान्त शास्त्री अंत में इस निष्कर्ष पर पहुंचते है, ''हमारा कल्याण तो इसी में है कि हम चातुर्वर्ण्य के नाम तक को, चाहे वह कर्म से हो या जन्म से मटियामेट कर दें, जिससे फिर कभी वह अंकुरित न होने पाए राहुल सांस्कृत्यायन वर्ण–व्यवस्था, जातिवाद एवं उसके फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले शोषण, उत्पीड़न और घोर अन्याय से बहुत चिन्तित थे, इसलिए एक बार उन्होंनें क्रोध में यहां तक कह डाला, मुझे ख्याल आता था– ऐसे समाज को जीने देना पाप है। इस पाखण्डी,धूर्त, बेईमान, जालिम, नृशंस समाज को पैट्रौल डालकर जला देना चाहिए।

बुद्ध और उनकी परम्परा के विद्वानों को छोड़कर हिन्दू और वैदिक परम्परा में आने वाले विद्वानों ने वर्ण–व्यवस्था और जाति–भेद पर इस प्रकार के विचार प्रस्तुत किए, जिससे बहुत बड़ा घपला और भ्रम पैदा हो गया। लेकिन आधुनिक युग में श्री एस वी केटकर, श्री जी. एस. घूरये, श्री एम. एन. श्रीनिवास और डॉ. बी. आर. आंबेडकर आदि के द्वारा इस समस्या का वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। ये सभी विद्वान इस बात से पूर्ण रूपेण सहमत है कि वर्ण–व्यवस्था और जाति–भेद ने भारत की जितनी हानि की है, उतनी सम्भवतः किसी अन्य संस्था द्वारा नहीं की गई। डॉ. आंबेडकर इस विकराल दैत्य से जीवन भर तक संघर्ष करते रहे और अंत में उन्हें केवल एक मात्र मार्ग दिखाई दिया कि बुद्ध के धर्म का अनुशीलन किया जाए। इस बात को ध्यान में रखते हुए उन्होंनें सन् 1956 ई. में आगरा के रामलीला के मैदान में कहा था, मै तो बुद्ध होने जा रहा हूँ और मैं अपने अनुयायियों से कहना चाहूंगा कि वे सोच–समझकर मेरे साथ आएं। सवर्ण भी अपने और दुनिया के कल्याण के लिए बुद्ध के मार्ग पर चलें तो अच्छा होगा।

हिन्दू समाज में वर्ण–व्यवस्था और जाति–भेद के कारण अस्पृश्यता का जन्म होता है। 30 जनवरी 1944 को कानपुर में डॉ. आंबेडकर ने कहा था, दलितों और शोषितों के पतन का मूल कारण हिन्दु धर्म है। उन्होंने आगे कहा, छुआछूत हमारे पतन का प्रधान कारण है। जिस धर्म में ऐसे पतन वाले कारणों को धर्म कहा जाता है, उसे मानने वाला मुर्ख ही नहीं, बल्कि वह वज्र मूर्ख है। डॉ. आंबेडकर ने नागपुर में अपने भाषण में कहा, ''हम जो लड़ रहे है, वह इज्जत के लिए लड़ रहे है। मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है– इज्जत से रहना। हिन्दु धर्म की अमानवीय मान्यताओं के बारे में उन्होंने कहा, मैने हिन्दु धर्म के त्याग करने का आंदोलन 1935 ई. में शुरू किया था और बराबर इस आंदोलन को चला रहा हूँ। यवला–नासिक में इस आंदोलन को चलाने के लिए 1935 ई. में बड़ा जलसा किया था और उसमें एक प्रस्ताव द्वारा हमने निर्णय किया था कि हम इस धर्म को छोडेंगे। मैनें उसी समय यह प्रतिज्ञा की थी कि यद्यपि मैने हिन्दु धर्म में जन्म अवश्य लिया हूँ, लेकिन हिन्दु धर्म में रहकर नहीं मरूंगा। ऐसी प्रतिज्ञा मैने आज से 21 वर्ष पूर्व की थी और उसे आज पूरा कर दिखाया। इस धर्मान्तरण से मैं बड़ा ही खुश हुआ हूँ। और प्रफुल्लित हो उठा हूँ। मुझे ऐसा मालूम होता है कि मैं नरक से छुटकारा पा गया हूँ। डॉ आंबेडकर ने हिन्दु धर्म के बारे में आगे कहा, ''जिन लोगों ने हमारा नाश किया है, उसका यह अन्यायपूर्ण धर्म उनके सामने ही नष्ट होगा। मैं हिन्दु धर्म पर बेकार की आरोप नहीं लगाता। इस पापमय धर्म में किसी का उद्धार नहीं हो सकता। यह धर्म नष्ट हो चुका है, इसमें कोई जान नहीं है।

अभी तक अधिकांश दलितों और शोषितों ने बौद्ध धर्म नहीं अपनाया है, इसलिए वर्ण–व्यवस्था और जाति–भेद के फलस्वरूप छुआछूत पैदा होने के कारण आज भी उनका भयंकर शोषण, उत्पीड़न, अत्याचार, अन्याय, बलात्कार, हत्याएं, आगजनी और महिलाओं को नंगा घुमाने की घटनाएं आए दिन भारत में होती रहती हैं। भारतीय संविधान में शोषण के विरूद्ध अधिकार और अन्य कानूनी प्रावधान होने पर भी आज तक शायद ही किसी सवर्ण को इन अपराधों की सजाएं दी गई हों। उसका सबसे बड़ा और मुख्य कारण यह है कि प्रशासन, पुलिस और न्यायालयों में सवर्ण ही बैठे हुए हैं। चाहे कानून कुछ भी हो, लेकिन इन लोगों की मानसिकता यह है कि जो दलितों हजारों सालों से बेगार और गुलामी करते चले आ रहे है, वे लोग आज किस प्रकार स्वतंत्र होकर उनकी बगल में बैठ सकते हैं।

भारत में सरकारें, किसी भी दल की रही हों, वे दलितों और शोषितों पर होने वाले उत्पीड़न और अत्याचारों को समाप्त करने में ईमानदार एवं संवेदनशील नहीं रही हैं। उदाहरण के लिए भारत सरकार ने कागज के शेर और फसल की रखवाली के लिए बिझुके की तरह अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों पर होने वाले अत्याचारों, उत्पीड़नों और अन्यायों को रोकने के लिए राष्ट्रीय आयोग बना रखा है, जिसे किसी भी प्रकार का कानूनी अधिकार प्राप्त नहीं है। यह आयोग दलितों और शोषितों पर होने वाले अन्यायों और अत्याचारों की रोकथाम, अन्याय और अत्याचार करने वालो के विरूद्ध नौंटकी की लीला, ड्रामा और नाटक अवश्य करता है। इस आयोग को बहुत बड़ा पाखण्ड और दलितों एवं शोषितो की आंखों में घूल झोंकने बाली बहुत बड़ी ताम–झाम वाली सरकारी संस्था कहा जा सकता है।

आज दलितों पर अत्याचार और अन्याय प्रत्येक क्षेत्र में हो रहें है। कारखाना हो या डाकखाना, थाना हो या दवाखाना, देहात हो या शहर, कोई भी ऐसे अछूती जगह नहीं, जहां पर दलितों का शोषण, उत्पीड़न और उन पर अन्याय एवं अत्याचार नहीं किया जा रहा हो। रक्षक ही भक्षक बनकर मानवता को दफन करने पर लगे हुए है।

प्राचीन काल से लेकर आधुनिक युग तक देखा जाए, तो पता चलता है कि भारत की जितनी हानि वर्ण–व्यवस्था और जाति–भेद ने की है, उतनी शायद ही किसी अन्य संस्था ने की हो। जिस व्यक्ति पर इसका भूत सवार हो जाता है, यथार्थ में वह व्यक्ति मानसिक रोगी और पागल हो जाता है। मैंने अपने जीवन में अनेक ऐसे पढ़े–लिखें लोगों को देखा है, जो भारत सरकार के सचिव, दिल्ली के उपराज्यपाल, मंत्री और मुख्यमंत्री तक रह चुके है, जिन्हें अनुसूचित जाति का नाम सुनते ही बिच्छू का डंक जैसा लग जाता था। इस प्रकार की मानसिकता के लोगों ने भारत का सत्यानाश और नरक बना दिया है। अब इस स्थिति से बचने के लिए दलितों, शोषितों, पिछड़ो और अल्पसंख्यको का परम कर्त्तव्य है कि वे सभी बुद्ध की शरण में चले जाएं और संगठित होकर बहुत बड़ी क्रांति करने के लिए तैयार रहें।

वर्ण–व्यवस्था और जातिवाद की एक मात्र काट बौद्ध धर्म है। उसका सबसे बड़ा कारण यह है कि हिन्दू धर्म अन्धविश्वास, पाखण्ड और अन्यायपूर्ण व्यवस्था पर निर्भर करता है, जबकि इसके विपरीत बौद्ध धर्म के प्रज्ञा, शील, मैत्री और करूणा सर्वोच्च साध्य है, जिनका अनुशीलन करके व्यक्ति 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय, लोकानुकम्पाय' की ओर उन्मुख हो सकता है। इसलिए समस्त भारतीयों को डॉ. आंबेडकर के प्रति अपार अनुग्रहीत होना चाहिए कि उन्होंने मानव मात्र के कल्याण के लिए बुद्ध के मार्ग को प्रशस्त किया। अगर समस्त भारतीयों ने बुद्ध के मार्ग का अनुशीलन किया, तो यह निश्चित है कि भारत का कल्याण अवश्य होगा, अन्यथा विनाश निश्चित है।

संदर्भ ग्रंथ

1. एम. एम. सिंह : बुद्धकालीन समाज और धर्म, 1972, पृ. 13. (चुल्लवग्ग 9/1/4)।
2. अर्नेस्ट बेन्ज : बुद्धिज्म और कम्युनिज्म, 1965, पृ. 108।
3. द् एसेन्स ऑफ बुद्धिज्म, पृ. 60।
4. वही., पृ. 61।
5. ई. जे. जुर्गी द्वारा सम्पादित : द् ग्रेट रिलिजन्स ऑफ द् वर्ल्ड, 1946,पृ0 97।
6. एच. अलेक्जेण्डर : कन्सीडर इण्डिया, 1961, पृ. 2–3।
7. कण्ह–जातक (संख्या 440), वही (चतुर्थ खण्ड), पृ0 335।
8. पालि साहित्य का इतिहास, भरत सिंह उपाध्याय, पृ0 335।
9. द्रष्टव्य, सुन्दरिक–भारद्वाज, भरत सिंह उपाध्याय, पृ0 335।
10. द्रष्टव्य, तित्तिर–जातक, (संख्या 37), जातक, प्रथम खण्ड, पृ0 287–289।
11. धर्म : तुलनात्मक दृष्टि में, एस0 राधाकृष्णन् पृ0 75।
12. राजोवाद–जातक (संख्या 151), जातक (द्वितीयखण्ड), पृ0 166।
13. ऑकेजनल स्पीचेज एण्ड राइटिंग्स, 1956–62, एस0 राधाकृष्णन्, पृ0 321।
14. ऋग्वेदे, 10–191।
15. बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर संपूर्ण–वाड्मयः, खंड 1, पृ0 17, भारत में जाति–प्रथा (1993)।
16. शास्त्री, रजनीकान्तः हिन्दू जाति का उत्थान और पतन, पृ0 289 (1976)।
17. सांस्कृत्यायन, राहुलः तुम्हारी क्षय, पृ. 6,(1971)।
18. वहीं, पृ. 50।
19. शास्त्री, रजनीकान्तः हिन्दू जाति का उत्थान और पतन, पृ. 290 (1976)।
20. सांस्कृत्यायन, राहुलः तुम्हारी क्षय, पृ. 9 (1971)।
21. शास्त्री, एम. ए. सम्पाः सम्मान के लिए धर्म परिवर्तन करें, पृ. 36 (1969)।
22. वही, पृ. 37।
23. वही, पृ. 54।
24. वही, पृ. 55।
25. वही, पृ. 60।